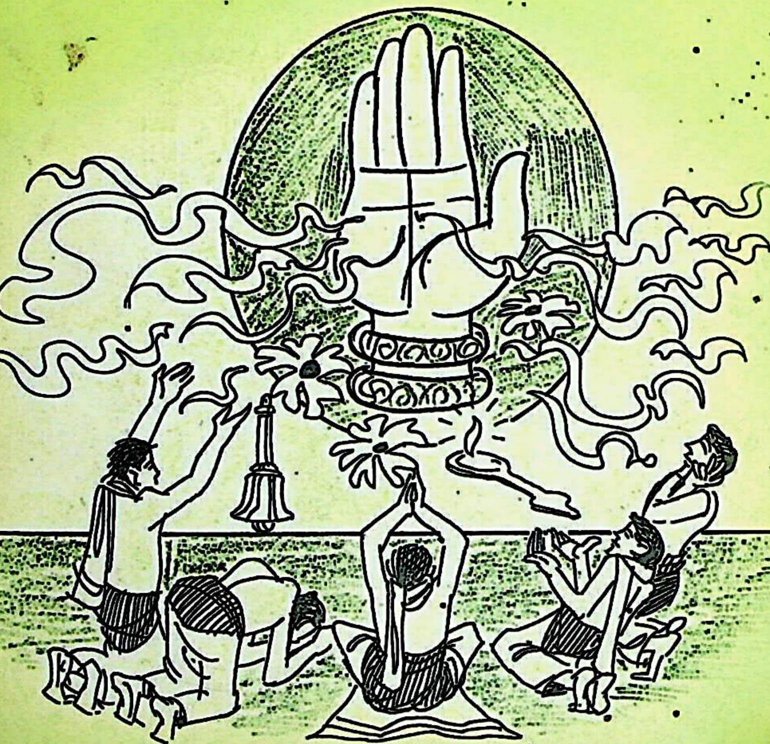
दिव्य जीवन विचार



श्री गुरुजी – स्वामी विवेकानन्द



ड़िवाइन पार्क
श्री गुरूजी - स्वामी विवेकानंदजी की आध्यात्मिक प्रयोगशाला

यह ड़िवाइन पार्क एक आध्यात्मिक मंदिर है। इसमें विश्वमानव धर्म के आदर्श विचारों का प्रचार होता है। यह आध्यात्मिक केंद्र स्वामी विवेकानंदजी के आध्यात्मिक तत्वों तथा आदर्शों का प्रसरण करने के लिए बद्ध हुआ है। स्वामी विवेकानंदजी के जाग्रत चेतन का दिव्य सान्निध्य इस ड़िवाइन पार्क में है। उनके जाग्रत चेतन को 'श्री गुरूजी' के नाम से पुकारा जाता है। उनके द्वारा दिए जानेवाले संदेशों को मानवता के कल्याण के लिए यह केंद्र जगदाद्यंत प्रचार- प्रसार कर रहा है।

सर्वधर्मसमभाव, जीवशिवसेवा, व्यक्ति के आंतर्य में स्थित दैवत्व एवं भगवद् साक्षात्कार के ध्येयों को जनमन में बो देने का काम यह ड़िवाइन पार्क कर लेता है। यह एक आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। इससे व्यक्तियों के आंतर्य में स्थित दैवत्व की जानकारी का शिक्षण आसक्त साधकों को दिया जा रहा है। तन्मूलक मानव को मानवता तथा दैवीप्रज्ञा की ओर चढ़ने की प्रेरणा दे देता है। आत्मशक्ति जाग्रति के द्वारा सर्वमान्य मानवीय मौल्य रूपी प्रेम, सहनशीलता, क्षमा, कर्तव्यपरता तथा निस्वार्थता की तरफ हरेक को प्रेरित करता है। इस प्रकार प्रामाणिक आध्यात्मिक साधकों को भगवद् साक्षात्कार के लक्ष्य की ओर ले जाने का पुण्य-पावन कार्य करने में इस केंद्र ने अपने आपको समर्पित किया है।

9·3

दिव्य जीवन विचार

आत्मशक्ति जागरण के लिए
श्री गुरुजी द्वारा प्रदत्त संदेशामृत



जाग्रत प्रकाशन

ड़िवाइन पार्क ट्रस्ट (रिजिस्टर्ड़)

सालिग्राम– 576 225, उडुपि जिला

टेलिपाक्स (0820) 2565406

"DIVYA JEEVAN VICHAR"

-Gospel of Sri Guruji - Swami Vivekananda

Published by
Jagratha Prakashana
Divine Park Trust (Regd.)
SALIGRAMA - 576 225
Udupi District

प्रथम मुद्रण : नवंबर 2005

मूल्य रू. 10-00

अक्षर संयोजन :
प्रभु मुद्रण, बेंगलूर - 560078.

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानंद जी के दिव्यलीला क्षेत्र रूपी इस 'ड़िवाइन पार्क' में अनुष्ठान वेदांत के कई रहस्यों को वर्तमान दुनिया में अन्वय करते हुए अति सरल रीति में श्री गुरूजी गत बीस वर्षों से बताते आ रहे हैं।

I.T के इस युग में आधुनिक मानव को Inner Tuition भगवान् से प्राप्त कर Intuition को अपने में फुलाकर तन्मूलक दिव्यता का रसानुभव प्राप्तकर आदमी पशुत्व से दैवत्व की ओर जाने का रहस्य विचार श्री गुरूजी अत्यंत मार्मिक रूप में यहाँ बता रहे हैं। मानव जन्म प्राप्त हरेक व्यक्ति को आंतर्य में स्थित प्राणनाथ रूपी भगवान को देखने का समान अधिकार है, इस दिशा में छल, बल और कामना से आगे बढ़कर समर्थ गुरू के नित्य मार्गदर्शन द्वारा जीवन को प्रकाशित कराना अति प्रधानं कर्तव्य होना चाहिए न?

जीवन को पावन बनानेवाले अनेकों रहस्यों को बतानेवाले श्री गुरूजी "जिंदगी के सब दु:ख-दुम्मानों को सामना करते हुए आनंदित होकर सार्थक जीवनयापन करने कैसे अग्रसर हो सकते हैं?" इन रहस्यमयी विचारों को कई विधानों से समझा चुके हैं। इस दिशा में यह छोटा सा सद्ग्रंथ तो सभी स्तर के लोगों को अत्यमूल्य रीति में सहायक हुए बिना नहीं रहता है।

इस सद्ग्रंथ की तैयारी में पर्याप्त मात्रा में सहायक हुए परमप्रिय श्री शिवप्प, श्री एस.एन. श्रीराम, श्री के.पी. नंदन प्रभु, श्री दुर्गाप्रसाद, श्री रमेश शेणै एवं श्री विष्णु भट्ट आदि को मेरी हृत्पूर्वक कृतज्ञताएँ हैं। मेरा आशय है कि जीवन को मधुमय बनाने में यहाँ के सद्विचार अमूल्य टानिक बनेंगे।

- डाक्टरजी।

विजयदशमी,

१२-१०-२००५

सालिग्राम-५७६२२५

दिव्य जीवन विचार

भगवान को रंभा बना देना

रंभा के सहारे पत्थर को आसानी से तथा शीघ्र हटाया जा सकता है। इसी प्रकार तुम तुम्हारा – तुमसे –आदि दैवीभाव तीव्रतर होते हुए वह भगवान ही अपनी कृपा किरणों को 'रंभा' बनाते हुए संचित कर्म का भार जब दूर किया जाता है, तब आनन्दानुभूति उदित होती है, दैवीगुण समृद्ध बन जाते हैं। अतः शक्ति– सामर्थ्य की वृद्धि होती है। इस प्रकार भगवान को 'रंभा' बना देने से ही साधना की सार्थकता संभव है। केवल जीवन बिताने से कोई लाभ नहीं । 'अच्छी तरह 'जीना' चाहिए। ऐसा आशय रखनेवालों को भगवान को रंभा बनाने से ही आसानी से –सुगमता से यश मिलता है। श्रेय भी मिलता है। शून्य बनने की क्रिया के कुसुम से ही फूलनेवाले भगवान को 'रंभा' बनाने की यह क्रिया आत्म जाग्रति का द्योतक ही है। आत्मोन्नति का मूल प्रेरक भी है।

सबेरा होता है। आँखें बन्द करते हुए बिस्तर से आप उठ जाते हैं। मल विसर्जन के लिए जाने की इच्छा होती है। रात को भोजन के बाद सो जाने तक का 'हाल' मालूम रहता है। आप तो सोते रहते हैं। लेकिन उस समय भी साँस क्रिया –रक्त परिचलन (Blood Circulation) हृदय की धड़कन –ये सब क्रियाएँ बिना किसी रुकावट के, चलती ही रहती हैं। पाचन क्रिया भी होती रहती है। पोषकाँश रक्त में मिल जाते हैं। क्या आप कभी यह सोचते हैं कि इन सबका कारणकर्ता कौन हैं ? मल –विसर्जन के उपरांत हाथ मुँह धोते समय में ही पिछले दिन किए हुए अधूरा काम याद आ जाता है। उस दिन के कामों का दृश्य भी आँखों के सामने आ जाता है। उस स्मरण निर्वहण – सोच – योजना –क्या आप को मालूम है कि इन सबके लिए मूल शक्ति कौन हैं ? रात को सोते समय शरीर और हाथ–पैरों में कभी कभी 'दर्द' रहता है। लेकिन सबेरे उठ जाने तक वह गायब हुआ होता है। शरीर

में नया उत्साह दीखने लगता है। क्या आप यह जानते हैं कि इसके लिए कौन कारण हैं? खुले मन से सोचने पर कठपुतली की नाच का कारणकर्ता अंदर रहनेवाला व्यक्ति ही है। इसी प्रकार इन सब जैविक क्रियाओं का कारणकर्ता आपकी देह में स्थित शक्ति ही है। चूँकि उसी शक्ति को भगवान कहा जाता है, यह मालूम हुए बिना नहीं रहता कि सारी जैविक क्रियाओं के सुगमता पूर्वक चलने के लिए वह भगवान ही कारण है। भगवान की उसकी महिमा को जानने से ही यह मानते हुए मन उसकी शरण में गए बिना नहीं रहता कि मैं तो जीता नहीं। तुम ही जिलाते हो, मेरी सामर्थ्य कुछ भी नहीं; सभी तुम्हारी ही है। जीवन लीला तुमसे ही चलाई जा रही है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही चल रही है। मैं– मेरा –मुझसे –इन भावनाओं को बाहर निकाल फेंकना ही 'शून्य' कहा जाता है। यह विचार पिछले लेख में आप पढ़ चुके हैं न? मैं – मेरा –मुझसे –इसी भाव को बाहर फेंक देने से अंतरंग

के अंधकार का निवारण हो जाता है लेकिन तुम– तुम्हारा – तुमसे – इस भावना को मन के अन्दर पहुँचाना – प्रकाश को आवाहित करने के समान ही है। चूहों को पकड़ने के लिए जो दौड़धूप किया जाता है, उसकी अपेक्षा चूहों को पकड़नेवाली बिल्ली को पालना ही आसान काम है। इसी प्रकार अंधकार के निवारण के लिए परिश्रम करने की अपेक्षा प्रकाश को आवाहित करना ही आसान मार्ग है। इसलिए आध्यात्मिक साधना का सारा यश इस प्रकार प्रकाश को अन्दर पहुँचाने में ही है। ऐसा करने से केवल जीवन लीला ही सुगम नहीं बनता, बल्कि दैवलीला के विश्वरूप के दर्शन भी हो सकते हैं।

मान लीजिए कि रास्ते में अटकानेवाला एक भारी पत्थर है। उसे हाथ के सहारे ही थोडा थोड़ा आधे घंटे में हटाया जा सकता है। क्या आप को मालूम है कि एक लम्बी लाठी से अथवा रंभा से उसे सुगमता से तथा शीघ्रता से हटाया जा सकता है ? उस लाठी

के एक छोर को उस पत्थर के नीचे रखते हुए और एक पत्थर के सहारे, उस लाठी के दूसरे छोर पर बल प्रयोग करने से वह बड़ा पत्थर आसानी से लुढ़क जाता है। केवल 10 मिनटों में उसका स्थानांतरित किया जा सकता है। इस साधन को ही 'रंभा' कहते हैं। पुराने मंदिरों के निर्माण में यह रंभा ही सरल यंत्र था। इसकी सहायता से काम आसान बनता है।

दिव्यता का मार्ग –भान् 'का रथ

गुफा के मुँह में लंबा–चौड़ा पत्थर रखा हुआ हो तो, गुफा के अन्दर चाहे जितना भी प्रकाश रहे क्या वह बाहर व्यक्त होता है ? रंभा के सहारे उस पत्थर को हटाने के बाद ही वह प्रकाश व्यक्त होता है न ? उसी प्रकार सबके अंतरंग में स्थित आनन्दमय – प्रेममय तथा चैतन्यमय भगवान के आविर्भाव के लिए भी संचित कर्म का बोझ अटकावा बना रहता है। संचित कर्म के उस बोझ के हटाए जाने पर ही आनन्द उमड़

आ सकता है। दैवीगुणों की वृद्धि भी हो सकती है। व्यक्ति की सामर्थ्य भी बढ़ सकती है । लेकिन संचित कर्म का वह बोझ किस प्रकार हटाया जा सकता है ? रंभा के सहारे हटाने के लिए वह तो वस्तुओं की कोई गट्ठर नहीं । पत्थर भी नहीं है न? चूँकि वह भावनात्मक है, उसे भावनात्मक 'रंभा' से ही हिलाया जा सकता है । उस भगवान कृपा किरण को इस प्रकार रंभा का काम करना हो तो व्यक्ति में तुम –तुम्हरा –तुम से– ऐसा भाव पैदा होना चाहिए। साथ साथ उस भगवान की महिमा के सामने शरणागत बन जाने की प्रवृत्ति बलवत्तर होनी चाहिए। अथवा विलोम रूप में कहना है तो व्यक्ति में तुम –तुम्हारा – तुमसे –ऐसा भाव मानते हुए उस भगवान की महिमा के सामने शरणागत होने पर ही उस भगवान की कृपा रंभा के समान अपना काम करती है संचित कर्म का भार कम करती है । इसलिए व्यक्ति को तुम – तुम्हारा –तुमसे –ऐसा भाव अपने मन में उतार लेना चाहिए। 'तुम ही सब कुछ हो, तुम्हारे बिना

मेरा अस्तित्व नहीं –इस प्रकार के 'भानु' भाव को अपनाना चाहिए। इसी को कहा जाता है – 'भानु' को 'रंभा' बनाना। वास्तव में भगवान द्वारा ही 'शून्य' बनाने की क्रिया है।

'रंभा' के सुगम चालन के लिए जिस प्रकार एक आधार चाहिए, उसी प्रकार भगवान की कृपा रूपी 'रंभा' के सुगम चालन के लिए भी दृढ़ भक्ति –श्रद्धा– व्याकुलता आदि का आधार अवश्य चाहिए। अर्थात् दृढ़ भक्ति – अचल श्रद्धा – तीव्र व्याकुलताओं से 'तुम – तुम्हारा –तुमसे' –ऐसी भावना से उस भगवान की महिमा को आवाहित करने से ही उस भगवान की कृपा 'रंभा' के समान काम करते हुए संचित कर्म के बोझ को हटा देती है। व्यक्ति के भाग में आनन्द प्राप्त करा सकती है। दैवीगुणों को समृद्ध बना सकती है। सामर्थ्यको बढ़ा सकती है। इस प्रकार 'तुम –तुम्हारा –तुमसे' ऐसे भावों को संवर्द्धित करनेवाले विधि विधानों

को ही 'भगवान को रंभा बनाने वाली विधियाँ कहते हैं। पूजा - प्राणायाम - पारायण -सद्ग्रंथों का पठन- वार्तालाप- उपवास इसके कुछ उदाहरण हैं।

पूजा

मनुष्य जीवन की महत्वाकाँक्षा भगवान की कृपा प्राप्त करके 'नर' को 'हर' बनना ही है। उस प्रकार से कृपा का आस्वादन करते हुए जीवन को ही 'मधुमय' बनाना है। ऐसा होने के लिए संचितकर्म का बोझ घट जाना चाहिए अथवा उस भगवान को ही ' रंभा' बनाना चाहिए। इसी को 'पूजा' कहते हैं। यही श्रेष्ठ विधान माना जाता है। 'आशा पूरा करो ' जीवन को मधुमय बना दो। अंतरंग की यह आर्त प्रार्थना ही पूजा है । अन्य धर्मों में भगवान मंदिरों में विद्यमान रहेगा तो हिन्दू धर्म में मंदिर को ही घर में रहने देते हुए भगवान को रंभा - बनानेवाला महास्त्र ही पूजा है । इस प्रकार पूजा की परंपरा चलती आ रही है। 'पूजा' शब्द के उच्चरित होते ही पत्थर पर पानी ड़ालते

हुए –अगर बत्ती जलाते हुए– फूल चढ़ाते हुए आरती उतारने का दृश्य आँखों के समाने आ जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार यह समय का दुरुपयोग करना ही है । उस दृष्टि से पूजा की जाय तो सचमुच वह व्यर्थ ही है। ऐसी पूजा भगवान को कभी 'रंभा' नहीं बना सकती । रंभा को सुगमता पूर्वक काम करने के लिए आधार दृढ़ बने रहना चाहिए। इसी प्रकार भगवान को रंभा बनाने के लिए दृढ़ भक्ति श्रद्धा और व्याकुलताओं का दृढ़ आधार अवश्य चाहिए। व्यक्ति में अपने अंतरंग के भगवान के अस्तित्व के बारे में दृढ़ भक्ति रहनी चाहिए । मूर्ति तो हृदय में स्थित भगवान का प्रतिबिम्ब ही है। व्यक्ति में ऐसी अचल श्रद्धा रहनी चाहिए कि भगवान उस जड़ मूर्ति के रूप में ही सब कुछ देखते हुए परीक्षा कर रहा है । मूर्ति को संबोधित करते हुए व्याकुलता के साथ ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए 'हे प्रभो मूर्ति में बसे रहे तुम क्या अपने जड़त्व को त्यागकर चैतन्य शील के रूप में व्यक्त नहीं हो सकते ? इस

प्रकार भक्ति –श्रद्धा –व्याकुलताओं का त्रिवेणी संगम होने से यह नहीं भूलना चाहिए कि वहाँ रंभा बना देने का, भगवान की कृपा किरण का आविर्भाव हुआ है।

तुम –तुम्हारा –तुमसे –भगवान के इस प्रकार की महिमा के स्मरण में ही स्नान करके शुभ्र वस्त्र पहने हुए पूजा करने तैयार होना चाहिए। अब यहाँ जो उल्लेखित किया गया है, वह मंदिर में की जानेवाली पत्थर की पूजा नहीं है; घर में रखे हुए धातु की छोटी मूर्ति को की जानेवाली पूजा है । मंदिरों में त्रिकाल पूजा की व्यवस्था है तो साधक के लिए प्रतिदिन केवल सबेरे पूजा करना ही काफी है। पूजा के पहले गंध पीसकर खिले हुए फूल तोड़कर आवश्यक तैयारी कर लेनी चाहिए। उसके बाद 'मैं – मेरा – मुझसे' –इस भावना को हटा देने के लिए –उस भावना से मन को रिक्त करने के लिए दण्ड़वत नमन करते हुए इष्ट मंत्र के जप के बाद ही पूजा करने बैठना चाहिए। पिछले दिन के

कर्मफल को अथवा संचित कर्म को दूर करते हुए नयापन अपनाने के द्योतक के रूप में पूजारंभ के पहले पिछले दिन का गंध, मुरझाए फूल – तुलसी आदि को निकाल देना चाहिए। उसके बाद 'मैं –मेरा –मुझसे'– इस भाव से अंधकार को दूर करनेवाले अथवा तुम –तुम्हारा, तुमसे –ऐसे भाव का प्रकाश अपने में भरने के द्योतक के रूप में पहले भगवान के सामने ज्योति – जलानी चाहिए। उसके बाद मूर्ति पर ठंडे पानी की धारा बहाते हुए अभिषेक करना चाहिए। गंदगी को मिटाने के लिए जिस प्रकार पानी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उपज पैदा करने के लिए भी पानी अवश्य चाहिए। दैवीगुण जैसे प्रेम–सहन–शीलता –कर्तव्यपरायणता – निस्वार्थता आदि को अपनाते हुए प्राणधारक के रूप में जीव तथा जीवलीला का मूलाधार भी पानी ही है। इसीलिए अभिषेक करते हुए, –मूर्ति को धोते हुए –इष्ट नाम स्मरण के साथ अथवा 'मैं सदा आपका हूँ, मुझ पर कृपा करके रक्षा करो' क्षमा करो –आगे ले चलो – मार्ग

दिखाओ, सबका भला हो – सबका मंगल हो' – ऐसे सभी मंत्रों के साथ अंतरंग की गंदगी पिघल जावे, मुझ में दैवीगुणों का विकास हो जावे –इसी प्रकार की सूचना देते रहनी चाहिए। इस प्रकार तुम –तुम्हारा –तुमसे – ऐसी भावना प्रेरेपित करते हुए 'हे देव उसका Main Switch तुम्हारे पास ही है। तुम्हारा मन हो तो वह साध्य है। हे प्रभो ! कृपा करके मेरा उद्धार करोगे न ? इस प्रकार मन अपने आप कहते हुए दीनता – शून्यताओं की तीव्र भावना से, व्याकुलता से आँसू बहाते रहना चाहिए। अंतरंग की गंदगी को पिघलाना वाले और दैवीगुणों की उपज पैदा करनेवाले सर्वशक्तिशाली भगवान की मूर्ति के स्पर्श से अभिषेक का यह पानी निकल आया है' – ऐसी भावना से अंतरंग के संस्करण के Tonic के रूप में उसे स्वीकार करने के लिए एक बरतन में निकाल रखना चाहिए। रुके हुए पानी के जैसे जड़त्व न आवे –इस दृष्टि से मूर्ति के ऊपर का सारा पानी एक शुभ्र वस्त्र से पोंछ देना चाहिए। बाद उस

मूर्ति की महिमा का स्मरण करते हुए ज्ञानशक्ति, क्रिया शक्ति, इच्छा शक्तियों का सौरभ सुगंध बढ़ने के लिए मूर्ति के भाल –छाती –हाथ पाँवों में गंध –लेपन करना चाहिए। उसके बाद प्रेम – क्षमा – सहनशीलता – कर्तव्यपरायणता – निस्वार्थता आदि दैवीगुण पनपते जावे– ऐसे आशय से रंगबिरंगे फूलों से उस मूर्ति को अलंकृत करना चाहिए। साधारणतया हरा पुष्प नहीं मिलता। इसलिए इस भाव से मूर्ति पर तुलसी चढ़ाना चाहिए कि भगवान का स्मरण सदा, हरा भरा रहे। तब प्रकृति में तरह तरह के प्रदर्शन करने वाले उस भगवान की महिमा का स्मरण करते हुए आँसू बहाते जाना चाहिए। पूजा के मंत्रों का अंतरार्थ भी यही है। उस अंतरार्थ को न जानते हुए समझने पर भी उस प्रकार की सूचनाएँ देते हुए यों ही मंत्रों को उच्चरित करते हुए की जानेवाली पूजा से कोई लाभ नहीं । इसलिए मंत्र का ज्ञान न रहने पर भी मेरे कहे अनुसार भगवान को प्रसन्न करने का तंत्र जानकर पूजा करने से अवश्य

सफलता मिलती है।

इतना होने के बाद श्री ललिता त्रिशति स्तोत्र के साथ कंकुमार्चन किया जा सकता है। उस समय भी हर एक मंत्र उच्चरित करते हुए कुंकुम अर्पित करते समय ऐसी प्रार्थना करते जाना चाहिए ''हे माता,अंतरंग की गंदगी को –अंधकार को अर्पित कर रहा हूँ। कृपारस प्रदान करो, मेरे जीवन को आलोकित कर दो। क्षमा करते हुए– आगे ले जाते हुए मार्ग दिखाते जाओ माँ। मेरा हाथ नहीं छोड़ो माँ।''

नदी से बहते जानेवाले पानी को कभी कभी समुद्र स्वीकार न करते हुए पीछे ही हटाता है। गुजरी दूकान में बेचने के लिए वस्तुएँ ले जाएँगे तो कभी कभी वह यह कहते हुए लौटाता है कि स्वीकार करने के लिए समय ही नहीं है। भगवान में अर्पित यह अहंभाव' ऐसा हटाया न जाय; वह 'अहंभाव' मिटकर 'भगवान ही चाहिए –ऐसे 'भानु' भाव का सौरभ अथवा 'जीवन

प्रकाशमय बन जाय' – ऐसा कहते हुए आँसू बहाने के बाद अगरबत्ती अथवा कर्पूर की आरती उतारनी चाहिए। नैवेद्य के रूप में 'फलों को अर्पित करना चाहिए। नैवेद्य करते समय 'पके हुए बन्दी बनानेवाले 9 दुष्टरूपी – काम–क्रोध – लोभ–मोह – मद–मात्सर्य– अहंकार–ममकार – संशय – फलों के छिलके निकाल दिए जायँ। बन्दी बनानेवाले 9 दुष्ट जो कच्चे फल के रूप में होते हैं, उनको तुड़वा दिया जाय –ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। उसके बाद अंतरंग के अंधकार को मिटाए हुए दैवीगुणों के प्रकाश को विकसित करने वाले 12 शिष्टों – (पंचेंद्रिय (आँख–नाक–कान–जीभ–चर्म) कर्मेंद्रिय (हाथ–पैर) ज्ञानेंद्रिय–(मन–बुद्धि–चित्त) – में भरने की प्रार्थना करनी चाहिए । जगत के सबके जीवन में अंधकार मिटकर संतोष रूपी प्रकाश फैल जावे – इस प्रकार की भावना से आरति उतारनी चाहिए। उस समय भी भगवान से कहना चाहिए 'हे प्रभो ! इस आरति के प्रकाश में मेरी बाहरी आँखों को तुम्हारी

मूर्ति के दर्शन हो रहे हैं। इसी प्रकार तुम्हारे दिव्य कृपा के प्रकाश में अंत: चक्षुओं को तुम्हारे भव्यदर्शन प्रदान करते हुए मुझे पावन बनाओ न ! –ऐसी प्रार्थना करते हुए उस समय भी व्याकुलता से कुंकुम या पुष्प को चढ़ाते हुए अथवा खाते हुए उस भगवान की कृपा दिनभर फूलते हुए रंभा बनकर आगे ले जाते रहे –इस प्रकार माँगना चाहिए। इस प्रकार पूजा समर्पक बन जाती है तो आनन्द और शांति उमड़ आते हैं। उस समय अंतरंग संस्करण व्यक्त हुए बिना नहीं रहता। पूजा के समय आपका जीव भक्ति –श्रद्धा व्याकुलताओं के प्रकाश में स्नान किया हुआ हो तो दिन भर पूजा का वातावरण बना रहता है।

फूल खिलकर सौरभ फैलने लगता है तो भ्रमर वहाँ उड़ आता है। इसी प्रकार पूजा के समय भक्ति श्रद्धा – व्याकुलताओं का कुसुम जितना फूलता जाता है, उतना ही 'तुम – तुम्हारा – तुमसे' – इन दैवी भावनाओं का सौरभ फैलता जाता है। उतने ही वेग से रंभा

के रूप में उस भगवान की कृपा का आविर्भाव हो जाता है।

स्तुति–स्तोत्र–पारायण

यह तो दुष्टों को दण्ड़ित करने में –शिष्टों की रक्षा करने में भगवान के रंभा के रूप में निभाए पात्र का आख्यान है। श्री ललिता सहस्र नाम – श्री विष्णु सहस्रनाम –श्री रामरक्षा स्तोत्र –नित्य पारायण के योग्य हैं। श्री विष्णु सहस्रनाम पारायण का फल श्री रामरक्षा स्तोत्र पारायण के फल के समान होता है। श्री ललिता सहस्रनाम और श्री राम रक्षा स्तोत्र पारायणों को लगातार करते जाना अच्छा है। प्रतिदिन प्रातःकाल पारायण का अभ्यास बनाए रखना चाहिए। ऐसे पारायण के समय आत्मोद्धार के लिए अपराधी भाव से प्रार्थना करनी चाहिए कि क्षमा कीजिए –आगे ले जाइए –मार्ग दिखाइए। बच्चा रोते चिल्लाते हुए अपनी माँ को गोद में लेने के लिए तंग किया करेगा तो माँ दौड़ती हुई आती है। अपने बच्चे को उठाकर प्यार करती है – साँत्वना देती है।

इसी प्रकार प्रार्थना करते हुए भक्त की तीव्रता बढ़ती जाती है तो वह भगवान भी दौड़ आकर –'रंभा' बनकर कृपा प्रदान किए बिना नहीं रहता।

प्राणायाम

क्षण –क्षण पर श्वासोच्छ्वास क्रिया चलाने वाला वह भगवान ही जैविक यंत्र की चालक शक्ति है । इस दृढ़ भावना से 'मैं –मेरा –मुझसे –' इन भावों को बाहर फेंकते हुए 'तुम –तुम्हारा –तुमसे' भगवान की इस महिमा का ही स्मरण करते हुए इन भावों को अपने मन में भरते हुए प्राण को नई शक्ति की कल्पना करनेवाली क्रिया है प्राणायाम। प्राणायाम करते समय व्यक्ति को सीधे बैठना चाहिए, भगवान की महिमा का स्मरण करते हुए दाहिने हाथ के अंगूठे से नाक के द्वार दबाकर पकड़े हुए, बाएँ द्वार से तुम –तुम्हारा – तुमसे – इस भावना से भगवान का स्मरण करते हुए शुद्धवायु को अन्दर लेना चाहिए। दाहिने हाथ की अन्य उँगलियों

से बाएँ द्वार दबाकर पकड़े हुए क्षमा करो – आगे ले चलो – मार्ग दिखाओ– मैं सदा तुम्हारा हूँ; मुझ पर कृपा करते हुए मेरी रक्षा करो' –ऐसी प्रार्थना करते हुए मूलाधार तक वह भावना पहुँचा देने का प्रयत्न करते हुए 'अहंभाव' मिट रहा है, –ऐसा मानते हुए इस अहंभाव से कलुषित वायु को बाहर फेंक रहा हूँ –ऐसी भावना से स्वीकार करना चाहिए कि उस कलुषित वायु को बाहर छोड़ रहा हूँ। इस प्रकार की भावना से हाथ की अंगुलियों को ढ़ीला करते हुए नाक के बाएँ द्वार से उस को छोड़ देना चाहिए। फिर इसी प्रकार बाएँ द्वार से शुद्ध हवा लेकर दाहिने द्वार से छोड़ देना चाहिए। तब एक प्राणायाम का चक्र पूरा हो जाता है। प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा संध्या को जप के पहले इस प्रकार 3–5 अथवा 9 प्राणायाम चक्रों को पूरा करने का अभ्यास कर लेना चाहिए। लेकिन केवल साँस लेने का 'Circus' नहीं होना चाहिए। दैवीगुणों का प्रेरक –पोषक होते रहने की ओर ध्यान

देना चाहिए। उस समय कम दबाव की जगह आसपास की वायु बह आने के समान 'अहं' भाव को जितना कम किया जाय ; वह भगवान वहाँ शीघ्र दौड़ आते हुए 'रंभा' बनकर अपनी कृपा प्रदान करता है।

सद्ग्रंथ पठन

भगवान को प्रसन्न कराने के लिए क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? ऐसा आदर्श उदाहरणों के द्वारा बिना बोले समझनेवाले सज्जन ही सद्ग्रंथ हैं। मन को खिलानेवाले महात्माओं की जीवनी, वचन वेद (उदा :– विवेक संपदा पत्रिका) उस वर्ग के हैं। प्रतिदिन सबेरे समय न मिले तो कम से कम संध्या को उन ग्रंथों के कुछ पन्नों को ही क्यों न हो, पढ़ने का – मनन करने का अभ्यास कर लेना चाहिए। ऐसा करते हुए उसके आधार पर अपने जीवन का सुधार करते हुए अपराधी भाव से 'क्षमा कीजिए – आगे ले जाइए – मार्ग दिखाइए – मेरा उद्धार करनेवाले आपके बिना अन्य

कोई नहीं'–ऐसी दीनता – सूचनाओं से प्रार्थना करनी

चाहिए। आत्मोद्धार का सपना साकार बना देने के लिए दास्यभाव से इस प्रकार की प्रार्थना करने पर अपने दास की प्रार्थना से प्रसन्न होकर दौड़ आते हुए राजा के समान पाठक के हृदय की दीनता तथा नम्रता के ताप से पिघलकर –गलकर वह भगवान 'रंभा' बनते हुए विशेष कृपा प्रदान करता है।

वार्तालाप

मानसिक ध्यानमग्न होकर, सदा इष्टनामस्मरण किए जाने के समान, वह भगवान, अपने सामने ही अथवा अपने साथ ही रहते हुए, अपने अंतरंग की सारी फरियादें सुनकर कृपा प्रदान करता है। ऐसा मानकर क्षण क्षण पर मौन होकर जो वार्तालाप किया जाता है, उसी को मानसिक संभाषण अथवा वार्तालाप कहा जाता है। प्रतिक्षण उस भगवान के साथ 'हे प्रभो, मेरा अन्य कोई बन्धु नहीं है ; मेरा साथ नहीं छोड़ो' जिस प्रकार विद्युत

प्रवाह रुक जाने से विद्युत क्षेत्र से लोहा नीचे गिर जाता है उसी प्रकार तुम्हारी कृपा न रहे तो मेरी दशा दयनीय हो जाती है। तुम ही चालक शक्ति हो –मैं तो यंत्र मात्र हूँ, तुम्हारे तो अनेक बच्चे हैं। लेकिन तुम तो मेरी इकलौती माता हो। शिशु में पर्वत पर चढ़ने की सामर्थ्य नहीं रहती। लेकिन माता ही अपने बच्चे को उठाकर चढ़ती है तो क्या शिशु में वह सामर्थ्य नहीं आएगी ? इसी प्रकार क्या तुम कृपा करके श्रेय की चोटी पर मुझे चढ़ा नही सकते ?'' इस प्रकार का भाव अंतरंग में सदा बने रहे तो, एक न एक दिन वह भगवान आपकी प्रार्थना अवश्य सुन लेगा। काँतत्व की शक्ति (Magnetic Power) अधिक होते होते 'लोहा' आकर्षित किया जाता है। 'भगवान ही चाहिए – भगवान ही काफी है' – ऐसा भाव परिशुद्ध हृदय में सरलता – मुग्धताओं के साथ ध्वनित होकर वार्तालाप में तीव्रता बढ़ेगी तो वह भगवान शीघ्र उधर दौड़ आते हुए 'रंभा' के रूप में कृपा प्रदान

किए बिना नहीं रहना।

उपवास

आहार सेवन से देह में 'चर्बी' बढ़ सकती है। उसके कारण बन्दी बनानेवाले 9 दुष्टों का उपद्रव अधिक हो जाता है। अंत:शक्ति तो नहीं बढ़ती। अंत:शक्ति के बढ़ने के लिए उसकी (साधक की) आर्त प्रार्थना तीव्र होनी चाहिए। चूँकि आहार सेवन करते रहने से पेट की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है, आहार सेवन को ही त्याग देना चाहिए। उस भगवान की याद में ही, मानसिक रूप से उस भगवान के साथ ही रहते हुए दिन बिताना ही 'उपवास' कहा जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि उपवास का अर्थ पके हुए पदार्थ (खाद्य वस्तुएँ) का सेवन न करते हुए उपहार लेना है। (बिना पकाए आहार) ऐसा करते समय भगवान की ओर अधिक ध्यान दिया नहीं जा सकता। वह भगवान को 'रंभा' नहीं बना सकता। उपवास करते समय पेट में आहार का सेवन न होने पर भी संग्रहीत चर्बी को

ही 'ईंधन' (Fuel) बनाते हुए, साँस के द्वारा जो आक्सीजिन सेवित किया जाता है, वह ईंधन के साथ मिल जाता है। शक्ति (Energy) का उत्पन्न होता है। यह तो उस भगवान का ही काम है, उसकी महिमा का स्मरण करते हुए 'तुम –तुम्हारा –तुमसे' भाव उमड़ आता है । भक्ति –श्रद्धा –व्याकुलताओं से अश्रु बहाते रहना चाहिए। इसलिए कम से कम सप्ताह में एक बार अथवा मास में एक दिन बिना खाये, उपवास करते जाने का अभ्यास करना चाहिए। उपवास रखते हुए, ध्यानशील होते हुए, आँसू बहाते हुए भक्त के पास वह भगवान दौड़ आता है और 'रंभा' के रूप में कृपा प्रदान करता है।

इन सब साधना –विधियों के लिए निर्मल– स्वच्छ, दैविक परिसर पूरक बन सकता है। इसलिए पूजा करते समय भगवान के सामने –मूर्ति के सामने के प्रदेश को झाड़– पोंछकर स्वच्छ रखा जाता है। इसी प्रकार

प्राणायाम करते समय भी परिशुद्ध वायु – प्रकाशों को बनाए रखना आवश्यक माना जाता है। पारायण –सद्ग्रंथ पठन –इनके लिए भी प्रशांत वातावरण अपेक्षित है। संध्या के समय कैवल्य की आत्माएँ भूस्पर्श करती हैं। लेकिन बड़े सबेरे के समय से आत्माएँ भूमि से निकल जाती हैं। उन समयों के वातावरण में ही विशेष तथा पवित्र स्पंदन का अनुसरण होता रहता है। इसलिए उन समयों में ही (प्रात:काल तथा संध्याकाल) पूजा – प्राणायामों को करते जाना अधिक श्रेयस्कर माना जाता है।

जीवन मधुमय जीवन प्रकाशमय बनें

मान लीजिए कि आँगन में कूड़ा करकट है। उसे हाथ से निकाला जा सकता है। लेकिन वही काम अगर शीघ्र बन पाना हो तो झाड़ू से हटाया जा सकता है न ? उसी प्रकार काम करना –आहार का सेवन करना गंदगी का विसर्जन करना –ये सब काम करते हुए साँस के चलते रहने तक जीवित रह सकते हैं। लेकिन जीवन

में सचमुच आनन्द बढ़ाना हो –प्रेम – क्षमा – सहनशीलता – कर्तव्यपरायणता –निस्वार्थता आदि दैवीगुणों का मधुर सामरस्य बनाए रखना हो – किया हुआ काम बहुत अच्छा बन पाना हो तो एकैक मार्ग है भगवान को 'रंभा' बनाना। 'आत्मना उद्धरेत आत्मानं' भगवद्गीता का यह कथन यह बिम्बित करता है कि अपनी उन्नति का शिल्पी स्वयं आप ही हैं । लेकिन इसका उल्लेख वहाँ नहीं पाया जाता कि उसके लिए साधना किस प्रकार की हो ? जो उल्लेख नहीं पाया जाता – उद्धार का राजमार्ग भगवान को रंभा बनाना ही है। इसलिए जीवन में उन्नति प्राप्त करनी है तो –श्रेय की चाटी चढ़नी है तो उन सबके लिए निश्चित मार्ग है भगवान को 'रंभा' बना देना। ऐसा करने से सारे काम सुगम बन जाते हैं। आसान बन जाते हैं। इतना ही नहीं, सुखदायक भी बन जाते हैं। इसलिए भगवान को 'रंभा' बना देना ही जीवन के उद्धार का सूत्र है। सुख – संतोषों को बढ़ाने में उसी का पात्र प्रधान रहता है।

उतराई जितनी अधिक रहती है, वस्तुएँ उतनी शीघ्र खिसक जाती हैं। पानी का खिंचाव जितना अधिक रहता है, उसके पास आए हुए पदार्थ उसी में समा जाते हैं। इसी प्रकार इन सब साधना –विधानों में भी दृढ़ भक्ति – अचल श्रद्धा व्याकुलताओं से उत्पन्न होनेवाला – तुम – तुम्हारा –तुमसे –उस दैवी –भाव की तीव्रता अधिक होते होते, भगवान को 'रंभा' बनाने में अधिक सफलता अवश्य मिल जाती है। इन सब साधना विधियों की सफलता उस पर निर्भर नहीं रहती कि आप उनके पीछे कितना समय व्यय करेंगे। लेकिन इस पर निर्भर रहती है कि आपके वे दैवीभाव कितने बलवत्तर हों और उनकी तीव्रता की मात्रा कितनी बलशाली होगी ? खर–पतवार को निकाल कर उपज पैदा करने पर ही समृद्ध फल मिलता है । इसी प्रकार आध्यात्मिक साधना में भी पहले 'शून्य' बनने की विधि विधानों में लगते हुए बाद में ही 'रंभा' बनाने का मार्ग अपनाना चाहिए। ऐसा करने से यश अवश्य मिलता

है। 'पंपसेट' में से वायु को निकाल बाहर करने से ही पानी उसमें से उमड़ आता है। इसी प्रकार अहंभाव को पहले उखाड़ फेंकने से ही भगवान को 'रंभा' बनाने का कार्य साध्य होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि शून्य बनने के बिना भगवान को 'रंभा' नहीं बना सकते। इसलिए साधना में शीघ्र यश प्राप्त करने के लिए शून्य बनाने के तथा रंभा बनाने के विधि विधानों को एक साथ अपनाते जाना अच्छा है ।

भगवान की कृपा : श्री रक्षा का आवरण

शून्य बनानेवाली सारी विधियाँ एक मुख की हैं। इसकी प्रतिक्रिया आपको मालूम नहीं कि वे समर्पक हैं अथवा नहीं। लेकिन भगवान को रंभा बनानेवाली विधियाँ ऐसी नहीं हैं। वहाँ क्रिया के लिए हर क्षण प्रतिक्रिया प्राप्त होती रहती है। ऐसी प्रतिक्रियाओं के कारण या तो पूजा करने के समय अथवा अन्य विधियों के समय आपकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान के हँसने का

भान होता होगा –बेटा, मेरे रहते तुमको भय क्यों ? ऐसी अभयवाणी सुन पड़ती होगी। ऐसा दिव्यानुभव होते हुए रोमाँचित होता होगा कि स्वयम् भगवान ही आप पर हाथ फेरते हुए साँत्वना दे रहा है। ऐसा सुखमय अनुभव होता होगा कि नाक को कोई अनुपम सुगंध स्पर्श करता हो – कोई मधुर वाणी कान में सुन पड़ती हो अथवा कोई उज्वल ज्योति आँख को दीख पड़ती है। इस प्रकार वर्धक 12 शिष्टों का पोषण करते हुए –भगवान ही बना देनेवाले 12 शिष्टों को प्रसन्न कराते हुए यह प्रतिक्रिया अनेक प्रकार व्यक्त होती होगी।

शून्य भाव बढ़ते जाने से वह 'रंभा' भाव को प्रचोदित करता रहता है। सब प्रकार के ये अनुभव बढ़ जाते हैं। इस प्रकार शून्य भाव की तीव्रता बलवत्तर होने पर जो फल प्राप्त होता है, वही 'रंभा' भाव है। 'मैं सदा आपका हूँ, मुझ पर कृपा करते हुए रक्षा करो' – यह शून्य भाव का प्रेरक मंत्र है तो क्षमा

कीजिए – आगे ले जाइए – मार्ग दिखाइए – यह तत्व 'रंभा' भाव का 'तारक मंत्र है'। अंधकार के निवारण का पता तब लग जाता है जब प्रकाश का प्रवेश होता है। इसी प्रकार साधक में रहे शून्य भाव की तीव्रता का पता उस समय लगता है जब उसमें यह रंभा भाव कितनी मात्रा में है।

योग की भव्यता – जीवन की धन्यता

मान लीजिए कि साईकल के 'Carrier' में 200 कि. ग्राम भार के लोहे का एक टुकडा है। तब जितना भी 'Peddle' कीजिए – क्या वह साईकल थोड़ा बहुत भी आगे चलेगी ? अधिकांश लोगों की जीवन गाथा भी इसी प्रकार की होती है। भगवान को प्रसन्न कराने के लिए, किसी प्रकार की साधना का फल दीख नहीं पड़ता। ऐसे लोग भगवान को रंभा बनाने की साधना तीव्र करते जाएँगे तो यश शीघ्र प्राप्त होतां है। घास की राशी चाहे जितनी बड़ी क्यों न हो, आग की छोटी चिनगारी के लगते ही भस्मीभूत हो जाती है। इसी

प्रकार "रंभा" बनते हुए वह भगवान कृपा किरण बहाएगा तो सारा संचित कर्म घटकर साधना फल सुव्यक्त होता है। इसलिए यह नहीं भूलना चाहिए कि निष्ठ साधना से भगवान को रंभा बना देने से ही जीवन में यश –श्रेय आदि प्राप्त होते हैं। मित्र के घर पहुँचे हुए आप पर वहाँ के भयानक कुत्ते आक्रमण करेंगे तो उन कुत्तों से लड़ते हुए –उनको हटाते हुए –मार पीटते हुए अपने मित्र के पास पहुँच जाने की अपेक्षा उस मित्र को ही बुलाकर वह अपने उन कुत्तों को पीछे हटा लेगा तो आप सुखपूर्वक उसके पास जा सकते हैं न? इसी प्रकार संचित कर्म भी अनेक रीतियों में आप को पीड़ित करते रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में इस तत्व को नहीं भूलना चाहिए कि उस भगवान की ही शरण जाते हुए – उसकी कृपा को ही 'रंभा' बनाते हुए उन पीड़ाओं से पार हो जाना, उन पीड़ाओं से लड़ते हुए उनको मार पीटते हुए पार जाने की अपेक्षा आसान है।

इस प्रकार जीवन की सार्थकता संचित कर्म का भार घटाने में ही निहित है । जब उस कर्म का भार घट जाता है भक्ति योग के साधक को भगवान के दर्शन का दिव्यानुभव होगा तो कर्मयोग के साधक में निष्काम कर्म करने की सामर्थ्य और भी बढ़ जाती है। 'ज्ञानयोग' के साधक को ज्ञान का नया प्रकाश दृष्टिगोचर होगा तो 'राजयोग' के साधक को स्वास्थ्य वृद्धि प्राप्त होती है और आनंदानुभव हो सकेगा । लेकिन भगवान को रंभा बना देने से इन सभी योग मार्गों पर चलनेवाले साधकों को अपने योग की पराकाष्ठा का साक्षात्कार आसान होगा। लेकिन आजकल के जीवन के लिए योगों का संगम माने जानेवाला 'भकज्ञाना' योग ही अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। इसलिए इस ड़िवैन पार्क में मैं इसी को कहते आया हूँ। भक्ति –कर्म– ज्ञान – राजयोगों को उचित मात्रा में बनाए रखे साधक को भगवान को रंभा बनाए देने से भगवान के दर्शन भी हो सकते

है। किए जानेवाला काम भी अच्छा ही बनता है। ज्ञान का प्रकाश भी दीख पड़ता होगा – स्वास्थ्य तथा आनन्दों की वृद्धि भी होगी। इस प्रकार 'भगवान' बनानेवाले गुण बलवत्तर होते जाते हैं। फल स्वरूप दिव्यानुभव बढ़ते जाते हैं। 'नर' ही 'हर' बन जाता है। इस ड़िवैन पार्क की 'आत्म शक्ति जाग्रति' का महान उद्देश्य भी यही है। इसे फलप्रद बनाने के लिए भगवान को ही रंभा बनाए रखने के देव दास की अधिक आवश्यकता है। आप सब इस दिशा में कार्यान्वित होंगे न ?

'मैं –मेरा –मुझसे' –इन भाव को हृदय रूपी बर्तन से बाहर निकाल फेंकना अथवा अहंभाव के अंधकार को हटाना ही 'शून्य' बनाना है । भगवान को रंभा बनाए रखने में यही प्रस्तावना है।

उस भगवान की महिमा को जानते हुए उसकी शरण

में जाते हुए – तुम –तुम्हारा –तुमसे' ही सब कुछ –इस प्रकार का 'तुम' भाव को प्रेरेपित करना अथवा 'तुम' भाव का प्रकाश आवाहित कर लेना, उसके द्वारा भगवान की कृपा किरण से संचित कर्म का भार हटाना ही भगवान को 'रंभा' बनाए रखना है। जब शून्य बनने की तीव्रता बढ़ जाती है तब प्राप्त होनेवाला समृद्ध फल यही है।

पूजा

फूल खिलकर सौरभ फैलने लगेगा तो भ्रमर उड़ते हुए वहाँ आ जाएगा। इसी प्रकार पूजा के समय में भक्ति –श्रद्धा –व्याकुलताओं का कुसुम पल्लवित होकर – 'तुम – तुम्हारा – तुमसे' – ऐसा दैवीभाव अपना सौरभ जितना फैलाएगा वहाँ रंभा के रूप में उतने बड़े वेग से उस भगवान की कृपा का आविर्भाव होता है।

प्राणायाम

कम दबाववाले प्रदेश में आसपास की वायु शीघ्र

घुस आती है; इसी प्रकार 'अहं' भाव जितना रिक्त किया जाता है, वह भगवान उसी मात्रा में 'रंभा' बनते हुए अपनी कृपा प्रदान करता है ।

स्तुति - स्तोत्र : पारायण

बच्चा रोते -चिल्लाते हुए गोद में उठा लेने के लिए जब माता को पीड़ित करता रहता है, तब वह माता दौड़ आती है, बच्चे को गोद में उठा लेती है; उसे साँत्वना देती है, इसी प्रकार पारायण करते हुए भक्त की माँग बलवत्तर होती जाती है, तीव्र बनती जाती है, तब वह भगवान भी दौड़ आते हुए अपने आपको 'रंभा' बना लेता है और कृपा प्रदान करता है।

सद्ग्रंथ पठन

अपने सेवक की दीनता से पिघल जानेवाले राजा के समान, अध्ययन करनेवाले लोगों के हृदय की दीनता - नम्रताओं से पिघल कर वह भगवान प्रसन्न हो जाता है; दौड़ आकर 'रंभा' बनते हुए विशेष कृपा प्रदान करता है।

भगवान के हाथ के अनेक दिव्यायुधों को –हथियारों को रंभा बनाए रखने की भगवान की शक्ति सामर्थ्य का प्रतीक

भार उठाने के लिए – काटने के लिए, घुमाने के लिए – टुकडे करने के लिए – यातायात के लिए – इस प्रकार नित्यजीवन के विविध कार्यों में तरह तरह के 'रंभा' को उपयोग में लाते हैं न? भगवान कृपा 'रंभा' बन जाने से भी वह कुकर्मों को घटा सकता है; चूर चूर कर सकता है; काट सकता है; संक्षेप में नाश कर सकता है। इसे दर्शाने के लिए ही भगवान के हाथों में अनेक प्रकार के हथियार रहते हैं। गंदा कुकर्म को कूटते हुए चूर करनेवाली भगवान की कृपा का संकेत हो तो 'चक्र' कुकर्म को चीर ड़ालने का संकेत है। खड्ग कुकर्म को काट देनेवाला संकेत है तो धनुष और बाण कुकर्म को टुकड़े टुकड़े करनेवाले संकेत हैं। 'त्रिशूल' कुकर्म को भौकने का संकेत है तो 'पाशांकुश' कुकर्म को तोड़ फोड़ने के संकेत हैं। इस प्रकार ये सब हथियार भिन्न –भिन्न प्रकार के रंभे बने हुए कृपा किरण बहाते

हुए श्रेय की चोटी पर चढ़ा देने उस भगवान के अद्भुत शक्ति सामर्थ्य के बहुमुखी कृपा के प्रतीक ही हैं।

'रंभा' बनाए रखने पर विकास होनेवालों द्वारा विकसित होनेवाले 12 वर्द्धक शिष्ट

साधारण खरपतवार से खरपतवार ही नहीं फसल भी नष्ट हो जाती है, लेकिन देवकृपा विचित्र सी है। वह तो खरपतवार के लिए मारक के जैसे उपज के लिए तारक है। लेकिन भगवान की कृपा तो एक ही समय में बन्दी बनानेवाले 9 दुष्टों को घटाते हुए 12 शिष्टों को पोषित कर सकता है। इसलिए उन 12शिष्टों के पोषण के लिए भगवान को ही 'रंभा' बनाना चाहिए। विलोम रूप में कहना है तो वर्धक 12 शिष्ट बलवत्तर होंगे तो समझना चाहिए कि भगवान 'रंभा' बन ही गया है - इस प्रकार भगवान को 'रंभा' बनाए रखने से 12 शिष्टों में जो परिवर्तन होता है, उसका स्थूल उल्लेख यहाँ किया गया है। आपके पोषण करनेवाले 12 शिष्टों में हुए परिवर्तनों पर विमर्शा करने पर पता

चलता है कि तुम "भगवान को "रंभा" बनाने में कहाँ तक यशस्वी बने हो।

मन : भक्ति बलवत्तर बन जाती है। बुद्धि – समालोचना में वृद्धि होती है। चित्त – भगवान के दिव्य –दर्शन लाभ होता है। आँख –सद्ग्रंथ पठन के लिए तड़पती है। कान –सद्विचार सुनना चाहता है– नाक –सत्संग के माधुर्य के लिए उत्सुक रहता है। जिह्वा – भगवान के नामस्मरण में ही सुख पाता रहता है। चर्म–दिव्यानुभूति से पुलकित होता है। हाथ – कर्तव्यपरायणता की वृद्धि होती है। हाथ –जीवशिव सेवा के लिए तड़पता है। पाँव – समाज सेवा के लिए उत्सुक होता है। पाँव – तीर्थयात्रा के लिए सदा आगे रहता है।

देव बनानेवाले 12 शिष्ट रंभा बनाने से खुश होते हैं

जल धारा के नीचे स्याही का बोतल रखने से सारी स्याही बह जाती है। उस बोतल में केवल शुद्ध जल

ही भर जाता है। इसी प्रकार 'रंभा' बने व्यवहार करनेवाले भगवान की कृपा किरण से व्यक्ति का संचित कर्म घट जाता है। उससे अंतरंग संस्करण हो जाता है 'हरभाव' की शोभा बढ़ जाती है। अथवा अंतरंग की दैविकता शोभायमान होती है। व्यक्ति में देव बन जाने के गुणों की वृद्धि होती है । इससे व्यक्ति भगवान सा बनता है। अथवा देव ही बनता है । 50% संचित कर्म घटते जाने से शुरु होकर संचित कर्म के पूर्णरूप से नाश होने तक उदित होनेवाले भगवान बनने के गुणों का उल्लेख यहाँ है। यहाँ की संख्याएँ नि:शेष होनेवाले संचित कर्मो का प्रतिशत (%) भी बताती हैं। इस प्रकार के गुणों के स्तर के बारे में चिन्तन करने के बाद आप को यह मालूम होता है कि आपने उस भगवान को कितनी मात्रा में 'रंभा' बना रखा है?

100% – भगवान के दिव्य दर्शन
वार्तालाप –स्पर्श करना आदि दिव्यानुभवों से जीव पुलकित हो उठता है।

98% भगवान के दिव्यदर्शन – देववाणी का श्रवण –लाभ प्राप्त होता है ।

95% –निस्वार्थता –कर्तव्यपरायणता बढ़ती है ।

90% –क्षमा बढती है ।

85% –प्रेम उमड़ आता है – त्याग तथा सेवा के लिए जीव तड़पता रहता है ।

80% –एकनिष्ठा बढ़ती है।

75% –एकाग्रता एकमुखी होती है ।

70% –व्याकुलता तीव्र बन जाती है ।

65% –शरणागति विराजमान रहती है ।

60% –श्रद्धा अचल बन जाती है ।

55% –आज्ञाकारिता अंकुरित होती है ।

50% –भक्ति दृढ़ होती है।

संभाषण

काँतत्व शक्ति (Margentic power) के बढ़ जाने

पर काँतक की ओर लोहा आकर्षित होता रहता है। इसी प्रकार –भगवान ही चाहिए –भगवान ही काफी है – इस प्रकार के परिशुद्ध हृदय की सरलता तथा मुग्धताओं की पुकार की ओर भगवान आकर्षित होकर कृपा दिखाते हुए 'रंभा' के रूप में आगे ले चलता है।

उपवास

यह जानते हुए कि माता को कष्ट होगा, बच्चा उसके भाग का काम कर देता है। वात्सल्यमयी माँ अपने उस बच्चे के पास शीघ्र दौड़ आती है। इसी प्रकार खान – पान किए बिना, भगवान के भाग की पाचन क्रिया कम करते हुए उसी के दर्शन के लिए तड़पते हुए, सदा ध्यान में ही निरत व्यक्ति की ओर भी वह भगवान दौड़आता है, 'रंभा' बनते हुए अपनी कृपा प्रदान करता है।

'रंभा' बनाए रखने का महा मंत्र

प्रत्येक उद्योग के लिए भी योग्यता आवश्यक होती

है। इसी प्रकार उस भगवान को रंमा बनाए रखने के लिए अथवा उसे कृपा प्रदान करने के लिए साधक में एक योग्यता की आवश्यकता है। वही है दीनता अथवा मुग्धता । जितनी संकुचित राशि मैं क्यों न रहूँ ? दोष दुर्बुलताओं की खान ही मैं क्यों न हूँ ? हे प्रभो ! मुझे क्षमा करो। मैं नहीं जानता कि उद्धार मार्ग पर चलने की शक्ति मुझमें है अथवा नहीं! ऐसी शक्ति रहने पर भी मैं यह नहीं जानता कि मैं कहाँ फिसल जाऊँ अथवा गिर पड़ूँ । इसलिए हे प्रभो ! मेरा हाथ पकड़े आगे ले चलो। तुम तो मुझे ऐसा पकड़ते हो कि मैं न गिर पड़ूँ। लेकिन जब रास्ता ही नहीं दीख़ पड़ता, मैं अपना कदम आगे कैसे बढ़ा सकूँ ? हे देव ! इसलिए मेरे उद्धार के मार्ग पर आवश्यक प्रकाश फैले हुए राजमार्ग बताओ। इस दिशामें भूतकाल में मुझसे जो कुछ हुआ है उसे क्षमा कर दो, वर्तमान में आगे ले चलो। भविषत् में सदा मार्ग दिखाते रहो। इस प्रकार क्षमा करो – आगे ले चलो – मार्ग दिखाओ –इस प्रार्थना का, अपराधी

भाव की असहायकता की ध्वनि में दीनता – मुग्धता और शून्यताओं की पराकाष्ठा से जप किया जाय तो वही उस भगवान को रंभा बनाते हुए कृपा प्रदान करने प्रेरित करनेवाला परमास्त्र बनने में कोई सन्देह नहीं।

रंभा बनाए रखने के भरोसा का भाष्य अहंब्रह्मास्मि

जल धारा के नीचे रखे हुए स्याही के बोतल से सारी स्याही बाहर बह जाने पर बोतल में केवल शुद्ध जल भर जाता है। इसी प्रकार शून्य बना रखने के विधानों से संचित कर्म का सारा बोझ हटाया जाय अथवा व्यक्ति पूर्ण रूप से शून्य बन जाय तो वह भगवान रंभा बन जाता है। थैला पूर्ण रूप से खाली नहीं किया जाएगा तो उसमें आवश्यक अन्य वस्तुओं को भरा नहीं जा सकता । अंधकार घट जाएगा तो प्रकाश ही फैल जाता है। व्यक्ति में वह भगवान ही 'रंभा' का रूप धरकर दैवीगुणों के द्वारा पूर्णरूप से व्यक्त होने पर वह व्यक्ति भी 'देव' ही बन जाता है। इस बात को अंतर्गत

अर्थ भी यही है कि 'देवदास' में भगवान वास करता है। वैसे अपने में भगवान को भरते हुए देव बन जाने का अथवा भगवान को रंभा बनाए रखते हुए महान कार्य साधने की सामर्थ्य सबमें रहती ही है। लेकिन यह सामर्थ्य का रहना एक बात है तो उनसे प्रदर्शित होने वाला आचरण अन्य प्रकार का होता है। मैं तो 'नर' नहीं –'हर' हूँ ; 'जीव' नहीं –शिव हूँ; मानव नहीं –माधव हूँ –यह विचार उस प्रदर्शिनी का तिरस्कार करते हुए, भगवान के अस्तित्व का समर्थन करनेवाला कथन है, अहं ब्रह्मास्मि' कथन भी उस भगवान के अस्तित्व पर प्रकाश डालते हुए, प्रदर्शिनी को त्यागते हुए उस भगवान को ही रंभा बना दिया जाय तो वह संभावित साक्षात्कार को ही बिम्बित करता है। इस प्रकार वह कथन भगवान को रंभा बनाए रखने का दर्पण है; साथसाथ उस भगवान के दिव्य कृपा स्वाद के भरोसे का भव्यभाष्य भी है।



...कानंदजी का दिव्यलीला माध्यम

डॉ। ए. चंद्र... उडुप... ... में वैद्य, प्रवृत्ति में आध्यात्मशील एवं साधक श्रेष्ठ हैं। लगभग गत पैंतीस सालों से श्री गुरूजी- स्वामी विवेकानंदजी से आध्यात्मिक मार्गदर्शन, स्फूर्ति प्राप्त कर रहे हैं। भक्त उन्हें 'ड़ॉक्टरजी' के नाम से संबोधन कर रहे हैं।

जब ड़ॉक्टरजी वैद्यकीय विद्यार्थी थे तभी श्री रामकृष्ण मठ के परमपूज्य स्वामी जगदात्मानंदजी से प्रभावित होकर साधना- जीवन में कूद पड़े थे, उनसे प्रेरित होकर स्वामी विवेकानंदजी से दर्शनभाग्य की प्रार्थना उन्होने की थी। स्वामी विवेकानंदजी के वर्तुल में अपने को समर्पित कर मानवता की सेवा में स्वामी विवेकानंदजी के यंत्र बनने हेतु ड़ॉक्टरजी साधनामग्न बने थे। उनकी साधना से संतुष्ट स्वामी विवेकानंदजी विशेष दर्शनभाग्य देने के साथ-साथ दिव्य आध्यात्मिक संदेश प्रदान कर रहे हैं। अपनी गुरुतर साधना से स्वामी विवेकानंदजी के हृदय को जीतकर ड़ॉक्टरजी व्यक्ति में स्थित दैवत्व प्रकाश के ध्येय प्रसार कार्य में खुद लीला माध्यम बने हैं। ड़ॉक्टरजी द्वारा ड़िवाइन पार्क की स्थापना कर श्री गुरूजी- स्वामी विवेकानंदजी अपनी दिव्य लीला प्रकट करते आ रहे हैं।



जाग्रत प्रकाशन
डिवाइन पार्क ट्रस्ट,
सालिग्राम - ५७६२२५
जिला - उडुपि, कर्नाटक